DOI: 10.51220/hjssh.v5i1.6
Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 5 pp.55 - 60, December, 2010, ISSN. 0975 - 9891

रियासत टिहरी का नारकीय कारागार

सुरेश चन्दोला
इतिहास विभाग, हे0नं0ब0ग0के0वि0वि0परिसर, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखण्ड

Received: 18-6-2010 **Revised: 21-8-2010** **Accepted: 29-10-2010**

ABSTRACT

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कारागारों का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। चाहे ब्रिटिश सरकार के अधीनस्थ कारागार रहे हों अथवा ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित रियासती कारागार, सभी अमानवीय अत्याचारों के गढ़ रहे हैं। मध्य हिमालय क्षेत्र में स्थित रियासत टिहरी का कारागार भी यन्त्रणा केन्द्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। प्रस्तुत शोध पत्र में रियासत टिहरी के नारकीय कारागार का वर्णन किया गया है।

KEYWORDS: Tehri Kingdom, Jail, Unhuman behaviour

सन् 1815 में गढ़वाल विभाजन के पश्चात् निर्वासित गढ़नरेश सुदर्शन शाह द्वारा 26 दिसम्बर, 1815 को टिहरी नामक स्थान को अपनी नयी राजधानी हेतु चयनित कर पुनः गढराजवंश की परम्परा को आगे बढ़ाया गया। प्रारम्भ में टिहरी धुनारों[1] की एक बस्ती मात्र थी, परन्तु गढ़नरेश सुदर्शन शाह के आगमन एवं राजभक्त परिवारों को दिये गये राज्याश्रय के पश्चात् कालान्तर में यह स्थान रियासत टिहरी के नाम से इतिहास में विख्यात हुआ एवं गढ़नरेश सुदर्शन शाह, टिहरी नरेश के नाम से विख्यात हुये।

सन् 1804 में गोरखों द्वारा गढ़वाल विजय से लेकर सन् 1815 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सहायता से गढ़वाल से गोरखों के उन्मूलन तक युवराज सुदर्शन शाह ने कई उतार–चढ़ाव देखे। राज परिवार में जन्में युवराज ने राज्य विहीन होने के समय अपने परिवार के साथ बहुत कष्टों का सामना किया। यही कारण रहा कि पुनः राज्य प्राप्ति के पश्चात् वह बहुत उदार हो गये थे। किसी नये स्थान को किसी राजवंश की राजधानी बनाकर उसे भव्यता प्रदान करना आसान नहीं होता, इसके लिये आवश्यकता होती है–अथाह धन की। सन् 1815 में गोरखों के विरुद्ध अंग्रेज़ों की सहायता लेकर सुदर्शनश्शाह युद्ध हर्ज़ाने के रूप में पहले ही अपना आधा गढ़वाल राज्य गंवा चुके थे। उनके पास इतना धन नहीं था कि वे टिहरी नामक निर्ज़न स्थान को गढ़वाल की अपनी प्राचीन राजधानी श्रीनगर की भांति सुन्दर एवं सुव्यवस्थित कर पाते, परन्तु जितना उनसे हुआ उतना उन्होंने किया।

टिहरी रियासत के संस्थापक सुदर्शनश्शाह एक उच्चकोटि के कवि एवं विद्वान थे। देवभाषा संस्कृत का उन्हें अच्छा ज्ञान था। राजदरबार में विद्वानों को संरक्षण प्राप्त था। अपने 44 वर्षों के शासनकाल में सुदर्शन शाह ने टिहरी को एक पक्की बुनियाद पर प्रतिस्थापित कर दिया था।

©SHARAD

सुदर्शनश्शाह के पश्चात् उनके पुत्र भवानीश्शाह टिहरी के शासक हुये। अपने 12 वर्षों के शासनकाल में जिस राज्य को उन्होंने अपने पिता से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया था, उसको उन्होंने और अधिक व्यवस्थित एवं संगठित किया।

भवानी शाह के पश्चात् उनके पुत्र प्रतापशाह सिंहासनारूढ़ हुये। वह एक कुशल शासक थे। उनके शासनकाल में टिहरी में अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात हुआ। उन्होंने अपने राज्य में अनेक विभागों जैसे–जंगलात, पुलिस, शिक्षा, न्यायालय आदि की स्थापना की। इन विभागों की वह स्वयं देखभाल किया करते थे। इस प्रकार अपने 15 वर्षों के शासनकाल में प्रतापश्शाह ने टिहरी को आधुनिक नगर का प्रारम्भिक स्वरूप प्रदान कर दिया था।

प्रतापश्शाह के स्वर्गवासी हो जाने के पश्चात् उनके पुत्र कीर्ति शाह ने टिहरी के शासन की बागड़ोर सम्भाली। वह विद्वान एवं नीति–निपुण शासक थे। टिहरी में उन्होंने अनेक विभागों का पुनर्गठन किया। बिजली, पानी, सड़क आदि की समुचित व्यवस्था की। शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया। घण्टाघर का निर्माण करवाया। अपने 22 वर्षों के शासनकाल में जहां उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कार्य टिहरी में किये वहीं निर्माण करवाया कारागार का, जो कालान्तर में रियासत टिहरी का नारकीय कारागार सिद्ध हुआ।

21 फरवरी, 1946 को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने श्रीनगर गढ़वाल में एक आम जनसभा को सम्बोधित करते हुये कहा था–"टिहरी राज्य के कैदखाने दुनिया में मशहूर होंगे, किन्तु इससे दुनिया में रियासत की कोई इज्जत नहीं बढ़ सकती।"[2] टिहरी कारागार की स्थापना का एक रोचक किस्सा है–

कार्तिकानन्द सेमवाल और उनके भाई जीवानन्द सेमवाल जयपुर (राजस्थान) में राजमिस्त्री का काम करते थे। एक बार कीर्ति शाह जयपुर गये ओर वहीं पर उनकी मुलाकात कार्तिकानन्द से हुयी। कार्तिकानन्द कुशल कारीगर थे। उनकी कला से प्रभावित होकर कीर्ति शाह उन्हें अपने साथ रियासत टिहरी ले आये। यहां उन्हे जेल निर्माण का कार्य सौंपा गया। जेल की गोलार्ध में तीन विशाल दीवारों के साथ 34 कोठरियां निर्मित की गयीं। उद्घाटन के अवसर पर किसी चुगलखोर ने राजा से यह शिकायत कर दी कि ठेकेदार ने नवनिर्मित कारागार की दीवारों पर अपना नाम उत्कीर्ण कर दिया है। साथ ही कारागार निर्माण के पश्चात् बचे शेष धन से अपने गांव में 34 कमरों का एक विशाल भवन बनवा लिया है। जांच के उपरांत यह बात सही साबित हुयी। तत्पश्चात् कार्तिकानन्द को नवनिर्मित कारागार में बन्द कर दिया गया। इस प्रकार कारागार का निर्माण करने वाला ही उस कारागार का प्रथम कैदी बना।[3]

जहां एक ओर ब्रिटिश सरकार द्वारा शासित भारतीय जनता फिरंगियों से अपनी दासतां की मुक्ति के लिये संघर्षरत्त थी, तो वहीं दूसरी ओर रियासत टिहरी की जनता दोहरी गुलामी का भार ढो रही थी। एक ओर टिहरी के शासक एवं दरबारी, तो दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित रियासत पर समय–असमय फिरंगी, जनता को प्रताड़ित करते रहते थे। रियासत के अन्दर किसी भी प्रकार के संगठन को बनाने एवं सभा करने की पाबन्दी थी। यही कारण था कि रियासत का पहला राजनैतिक संगठन 23 जनवरी, 1939 को देहरादून में प्रकाश में आया, जिसे 'टिहरी राज्य प्रजामण्डल' का नाम दिया गया।[4] प्रारम्भ में इस संगठन के कार्यकर्ता चाहते थे कि ब्रिटिश सरकार

उन्हें टिहरी के शासक के अधीन स्वशासन प्रदान करे, परन्तु रियासत के अन्दर कुछ घटनायें इस प्रकार घटित हुयीं कि रियासत की सम्पूर्ण जनता राजशाही के विरुद्ध हो गयी। तत्पश्चात् वे भारत की अन्य जनता के साथ पूर्ण स्वशासन की मांग करने लगे। टिहरी रियासत की जनता की पूर्ण स्वायत्तता की मांग के साथ ही प्रारम्भ हुआ राजशाही का दमन चक्र और रियासत के राजनैतिक बन्दियों के साथ किये गये अमानुषिक अत्याचारों के कारण विख्यात हुआ रियासत टिहरी का कारागार।

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय रियासत टिहरी पर राजा नरेन्द्र शाह का शासन था। स्वतंत्रता आन्दोलन एवं आन्दोलनकारियों से ये बहुत घृणा करते थे। यही कारण था कि टिहरी कारागार का अधीक्षक इनके द्वारा जो व्यक्ति नियुक्त किया गया वह अत्यधिक क्रूर एवं अत्याचारी था। स्वयं राजा द्वारा उसे राजबन्दियों के दमन के सभी अधिकार दिये गये थे। इस व्यक्ति का नाम था–मोरसिंह नेगी।[5] टिहरी कारागार में राजबन्दियों के साथ कितना अमानुषिक अत्याचार किया जाता था उसका विस्तृत विवरण इस आलेख में दे पाना सम्भव नहीं है। फिर भी जितना विवरण दिया जा रहा है उससे यह अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है कि वास्तव में रियासत टिहरी का कारागार नारकीय था।

रियासत टिहरी के कारागार में प्रवेश करते ही राजबन्दियों से उनका सम्पूर्ण व्यक्तिगत सामान ले लिया जाता था। यहां तक कि राजबन्दियों से उनके कपड़े भी उतरवा लिये जाते थे। तत्पश्चात् उन्हें साधारण बन्दियों की भांति कुर्ता–पाजामा, सीमेंट की कोठरियों में बिछाने के लिये एक फटा पुराना टाट का टुकड़ा व ओढ़ने के लिये बदबूदार कम्बल दिया जाता था। खाने के बर्तन–एक लोहे का ताला एवं लोटा होता था। दिये गये कपड़े इतने गन्दे होते थे कि उन पर कैदियों का पाखाना तक लगा होता था एवं कम्बल ख़ून से सने होते थे। कारागार के अन्दर कड़कड़ाती सर्दी दूर भगाने के लिये मन मारकर इन वस्त्रों का उपयोग करना ही पड़ता था।[6]

रियासत टिहरी के नारकीय कारागार का विवरण स्वयं राज़बन्दियों द्वारा इस प्रकार दिया गया है–

"सज़ा होते ही हम लोगों के कपड़े ले लिये गये और हमें फटे–पुराने कम्बल, जिनकी धज्जियां उड़ी हुयी थीं तथा जिन पर बीमार क़ैदियों का पाख़ाना लगा हुआ था और मक्खियां भिनभिना रहीं थीं, हमें दिये गये। पहनने के लिये एक जोड़ा लंगोट तथा एक कमीज़ दिये गये। सिर में पहनने के लिये साधुओं की सी टोपियां दी गयीं। सारे कपड़े भगवे रंग से रंगे हुये थे। मुझे विषेष रूप से एक ऐसी कमीज दी गयी, जिस पर किसी मरे हुये कैदी के ख़ून के धब्बे थे। उस कमीज़ को पहनते ही मेरे रोंगटे खडे हो गये। रात भर प्रत्येक दस मिनट पश्चात् उपस्थिति ली जाती थी और व्यर्थ ही परेशान किया जाता था।[7]

.....ख़ाने की व्यवस्था बहुत ही ख़राब थी। सवेरे पांच छटांक चावल एवं शाम को पाव भर आटे की रोटी व छंटाक भर पपीते की सब्जी मिलती थी। कुछ दिनों बाद चावल बन्द कर उसके स्थान पर ज्वार की रोटियां दी जाने लगीं।[8]

.....आटा ऐसा कि लगता था कि न जाने कितने वर्षो का वह पुराना रहा हो। उस पर ऊपर से भूसा, रेत एवं कोलतार तक मिलाया जाता था। इस बदबूदार ख़ाने को ख़ाने से यदि कोई राजबन्दी इन्कार करता, तो उसे बेंत के द्वारा पीटा जाता था। गर्मियों में मात्र दो–दो लोटे पानी

ही दिये जाते थे। इसी पानी से शौच जाना, ताला मांजना एवं पीने के लिये इस्तेमाल करना होता था। नहाने, कपड़े धोने एवं बाल बनाने की अनुमति नहीं थी।[9]

.....कारागार में स्वास्थ्य सेवाओं का पूर्णतया अभाव था। कारागार के अन्दर ही दो छोटे–छोटे कमरे थे। यहीं पर दो–चार ख़ाली शीशियां रखी हुयीं थीं। जब कभी डाक्टर की इच्छा होती तो वह कारागार का चक्कर लगा जाया करता। एक दिन रात को ठण्ड के कारण मेरे सिर में दर्द होता रहा, परन्तु कारागार निरीक्षक ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। दूसरे दिन मैं प्रमुख द्वार पर गया और वहीं से चिल्लाया कि यदि तुम लोग हमें मारना ही चाहते हो तो गोलियों से भून डालो इस तरह क्यों तड़पा रहे हो? जेलर मोरसिंह से काफी बहस के पश्चात् ही मुझे डाक्टरी सहायता उपलब्ध करायी गयी।[10]

.....कारागार के अन्दर आपस में बात भी नहीं करने दी जाती थी। ऐसा करने पर बेंत की मार पड़ती थी। जिन कोठरियों में राज़बन्दियों को बन्द किया जाता था वहां प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं होती थी। पिटाई के नित्य नये–नये तरीके ईज़ाद किये जाते थे। पढ़ने–लिखने का नाम लेना ही अपराध था। दाढ़ी और बाल सिर्फ़ दो बार कटते थे। एक कारागार में आने के व़क्त एवं दूसरे कारागार से जाने के व़क्त। पैरों में 25 से 30 सेर तक वज़न की बेड़ियां डाल दी जाती थीं। जिनकी यंत्रणा अनेक बन्दी सह नहीं पाते थे और राजा से मॉफी मांगने पर विवश हो जाते थे। बीमारी के ईलाज़ का कोई प्रबन्ध नहीं था। उपचार की बात करने पर जेलर मोरसिंह जबाब देता था–"मरोगे तो भिलंगना नदी पास ही है, वहां फेंक दिये जाओगे।"[11]

कारागार में दी जाने वाली यातनाओं से जब राजबंदी नहीं झुकते थे, तो रियासती पुलिसकर्मी उनके घर जाकर परिवार वालों पर दबाव डालते थे कि कारागार में तुम्हारे सम्बन्धी दयनीय दशा में जीवन यापन कर रहे हैं। अभी भी समय है तुम राज़दरबार में उनकी रिहाई के लिये आवेदन कर दो। यदि इसके पश्चात् भी राज़बन्दी का परिवार उनके निर्देश नहीं मानता तो पुलिसकर्मी परिवार के सदस्यों को कारागार के मुख्य द्वार तक ले जाते थे। वहीं से परिवारज़न कारागार की दुर्दशा देखते थे। परिवारवालों के सामने ही राजबन्दी को बेतों से पीटा जाता था। असहनीय पीड़ा से कराहते हुये अपने सदस्य को न देख पाने के कारण परिवार वाले राजदरबार में जमानत याचिका दाखिल कर लेते थे। पांच सौ रुपये से लेकर तीन हज़ार रुपये तक की जमानत पर राज़बन्दी रिहा किये जाते थे। कारागार से निकलने पर वे हड्डियों के ढांचे मात्र रह जाते थे। इस पर भी इन राज़बन्दियों को पूरे नगर में घुमाया जाता था ताकि अन्य नवयुवक इनकी दुर्दशा देख कर राजदरबार के विरुद्ध कोई विद्रोह न करें। साथ ही मुक्त राज़बन्दी को प्रतिदिन कोतवाली जाकर अपनी उपस्थिति दर्ज़ करवानी पड़ती थी। वह रियासत से बाहर किसी भी राज़नैतिक व्यक्ति से पत्र–व्यवहार नहीं कर सकते थे।[12]

ऐसा नहीं कि रियासती कारागार में राज़बन्दी ही उत्पीड़न के शिकार हुये हो। साधारण क़ैदियों के साथ भी अमानवीय अत्याचार किये गये। बेंत एवं डण्डों से पिटाई नित्यकर्म थी। रस्सी बनाने के लिये मूंज (घास) कूटने से लेकर आटा चक्की पीसना तक भारी भरकम काम इनसे लिये जाते थे। यदि समय रहते ये राजा से मॉफी नहीं मांगते थे तो कारागार से इनके कंकाल ही बाहर निकलते थे।

रियासत टिहरी के कारागार में सर्वाधिक यातनायें यदि किसी को दी गयीं तो वे और कोई नहीं श्रीदेव सुमन थे। श्रीदेव सुमन–रियासती आन्दोलनों के सूत्रधार जिन्होंने रियासत टिहरी के कारागार में 84 दिन का आमरण अनशन कर अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी, परन्तु अपने इस कार्य से वे न केवल भारतीय इतिहास वरन् विश्व इतिहास में अपना नाम अमर कर गये। श्रीदेव सुमन पर एवं उनकी शहादत पर इतिहास में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस आलेख में हम इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं करेंगे, जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिये हम यहां पर यही उल्लेख करेंगे कि कारागार में रहकर श्रीदेव सुमन वहां व्याप्त कुव्यवस्थाओं को सुधारना चाहते थे, परन्तु टिहरी रियासत के मुख्यमंत्री मोलीचन्द्र शर्मा एवं कारागार अधीक्षक मोरसिंह नेगी ने श्रीदेव सुमन पर जो अत्याचार किये वे सभी अवर्णनीय थे। श्रीदेव सुमन ने अपनी तीन मांगें दरबार के सामने प्रस्तुत की थीं:–

1. टिहरी रियासत में प्रजामण्डल को वैध घोषित किया जाये।
2. मेरे झूठे मुकदमें स्वयं राजा सुने एवं उन पर निर्णय दें।
3. मुझे कारागार से बाहर पत्र–व्यवहार करने की अनुमति प्रदान की जाये।[13]

उपरोक्त मांगों को पूरा करने का समय दिया गया 15 दिन। समयावधि पूर्ण होने के उपरान्त भी जब उनकी मांगों पर कोई विचार तक नहीं हुआ तो उन्होंने 3 मई, 1944 से अपना ऐतिहासिक आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् प्रारम्भ हुआ अमानवीय अत्याचारों का सिलसिला। उन्हें प्रतिदिन बेंत एवं डण्डों से पीटा जाता था एवं बलपूर्वक भोजन कराने का प्रयास किया जाता था। कारागार में डाक्टर बेलीराम द्वारा उन्हें सण्डेसी से दूध पिलाने तक का प्रयास किया गया, परन्तु सब व्यर्थ। पैरों में 35 सेर वज़नी बेड़ियां डाल दी गयीं। तन्हा कोठरी में कैद कर लिया गया। बाहरी दुनिया से सम्पर्क टूट गया, परन्तु सुमन इन अत्याचारों के सामने झुकने वाले कब थे? अन्ततः वह रियासती कर्मचारियों की बर्बरता के शिकार हुये और 25 जुलाई, 1944 को 84 दिनों के ऐतिहासिक आमरण–अनशन के पश्चात् उनकी जीवनलीला समाप्त हो गयी।[14]

श्रीदेव सुमन के पार्थिव शरीर को रात के अन्धेरे में एक बोरे में बन्द कर कारागार कर्मचारियों द्वारा भागीरथी एवं भिलंगना के संगम में फेंक दिया गया।[15] इससे पूर्व भी रियासती कारागार में न जाने कितने राज़बन्दी रहे होंगे, जिन्हें उनकी मौत की आहट भी नहीं सुनायी दी होगी, परन्तु श्रीदेव सुमन उन गुमनाम राज़बन्दियों में से नहीं थे। उनकी मौत पर सम्पूर्ण भारतवासियों ने आंसू बहाये, परन्तु रियासत टिहरी से इनकी मौत का बदला ले पाना सम्भव नहीं था, क्योंकि वहां जारी था नरेन्द्रशाह का दमन चक्र।

15 अगस्त, 1947 को भारत अंग्रेज़ों की गुलामी की दास्तां से मुक्त हुआ, परन्तु रियासत टिहरी का यह सौभाग्य कहां? कारण रियासती कर्मचारियों एवं स्वयं राजा का दमन चक्र। रियासत की मुक्ति के लिये शहीद हुये सेनानियों से प्रेरित जनता ने संगठित होकर जब एक बार अपने आकाओं के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ किया तो अन्ततः 1 अगस्त, 1949 तक वह रियासत टिहरी के संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश अब उत्तराखण्ड) में विलीनीकरण तक आन्दोलित रही। उस समय रियासत टिहरी में राजा मानवेन्द्रशाह का शासन था, जो यह भली–भांति समझ चुके थे कि अब रियासत की जनता पर शासन करना सम्भव नहीं है।

स्वतंत्र भारत में रियासत टिहरी के कारागार में अनेक परिर्वतन कर उसे जिला जेल बना दिया गया था, परन्तु स्थानीय जनता के आग्रह पर उस कोठरी को, जिसमें श्रीदेव सुमन ने अपने प्राणों की आहुती दी थी, को अपनी पूर्व स्थिति में ही रहने दिया गया। स्थानीय प्रशासन द्वारा उस कोठरी में श्रीदेव सुमन का चित्र एवं 35 सेर की वे बेड़ियां रख दी गयीं, जो अन्त समय तक उनके पैरों में बंधी हुयीं थीं। इतना ही नहीं प्रतिवर्ष सुमन शहादत दिवस 25 जुलाय को उक्त कोठरी को सजा–संवारकर जनता के दर्शनार्थ खोला जाता था। पुरानी टिहरी के जलमग्न होने तक सुमन कोठरी का अस्तित्व जस का तस बना रहा। वर्तमान में स्थानीय प्रशासन ने नई टिहरी के कारागार में एक कमरा श्रीदेव सुमन को समर्पित किया है, जहां आज भी 35 सेर की वजनी बेड़ियों को देखने प्रतिवर्ष 25 जुलाय को श्रीदेव सुमन के समर्थकों का तांता लगा रहता है।

सन्दर्भ

1.धुनारः–टिहरी में इस जाति का प्रमुख व्यवसाय नदियों से मछली पकड़ कर उन्हें बाज़ार में बेचकर जीविकोपार्जन करना था, परन्तु स्थानीय जनता की सहायता कर वह उन्हें रस्सी से निर्मित झूला पुल के सहारे नदी आर–पार कराने का काम भी किया करते थे।

2.भक्त दर्शन (सम्पादक)–सुमनांज़्जली, पृष्ठ सं0–13 (विनोद प्रिटिंग प्रेस लखनऊ, 25 जुलाई, 1946)

3.कोठियाल, संजय (सम्पादक)–युगवाणी मासिक पत्रिका, पृष्ठ सं0–29 (14 बी, क्रास रोड़,देहरादून, अप्रैल, 2009)

4.चन्दोला, सुरेश–गढ़वाल हिमालय के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व (अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध), पृष्ठ सं0–208

5.भक्त दर्शन (सम्पादक)–सुमन स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ सं0–112 (पर्वतीय नवजीवन मण्डल, सिल्यारा, टिहरी गढ़वाल, द्वितीय संस्करण– जुलाई, 1976)

6.दयानन्द अनन्त, (सम्पादक) पर्वतीय टाइम्स, नई दिल्ली, 15 अगस्त, 1982

7–8.नेगी, कुंवर सिंह 'कर्मठ'–(सम्पादक) कर्मभूमि विशेषांक, कोटद्वार गढ़वाल–26 जनवरी, 1956 शहीद सकलानी का अन्तिम पत्र, जो सन् 1947 में जेल से छूटते ही उन्होंने कर्मभूमि में प्रकाशनार्थ भेजा था।

9.राज़बन्दी परशुराम बड़ोनी (श्रीदेव सुमन के बड़े भ्राता) का एक अप्रकाशित पत्र

10.कर्मभूमि विशेषांक–26 जनवरी, 1956–पूर्वोक्त

11.भक्त दर्शन (सम्पादक)–सुमन स्मृति ग्रन्थ– पृष्ठ सं0–123

12.नेगी, कुंवर सिंह 'कर्मठ' (सम्पादक कोटद्वार)–भारत की आज़ादी में गढ़वालियों का महत्वपूर्ण योगदान पृष्ठ सं0–117

13.भक्त दर्शन (सम्पादक)–सुमन स्मृति ग्रन्थ– पृष्ठ सं0–117

14–15. डबराल, डॉ0 शिवप्रसाद–उत्तराखण्ड का इतिहास–भाग–6 पृष्ठ सं0–333–334 (वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, कोटद्वार–गढ़वाल)